



International Journal of Advanced Research in Education and Technology (IJARETY)

Volume 13, Issue 3, May - June 2026

Impact Factor: 9.971



भारत में महिला मानवाधिकारों का स्वरूप

Dr. Monica Vijay

Working in School Education Department, Rajasthan, India

शोध सार: उपरोक्त वैचारिक अध्ययन से स्पष्ट है कि महिला को वो सभी मानवाधिकार प्राप्त हैं जो एक नागरिक होने के नाते मिलते हैं। विसंगति तब पैदा होती है जब संस्थागत आधार पर नहीं अपितु व्यावहारिक आधार पर सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में इन अधिकारों का प्रयोग करते समय महिला को भेदभावपूर्ण परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

वस्तुतः महिलाओं के मानवाधिकारों का प्रश्न आंशिक रूप से सार्वभौमिक एवं आंशिक रूप से सांस्कृतिक है। यद्यपि महिला पुरुष से प्राकृतिक रूप से भिन्न है किंतु इस भिन्नता को असमानता में प्रकृति ने नहीं अपितु सामाजिक संरचनाओं ने परिणित किया है अतः यह असमानता, अधिकारहीनता, अन्याय की स्थिति परिवर्तनीय है, यदि इसकी उचित व्याख्या एवं प्रतिरोध किया जाए।

स्त्री अधिकारों की दृष्टि से जैसा कि विभिन्न शोधों से स्पष्ट हुआ है, वैदिक युग में स्त्रियों की प्रस्थिति सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में समानता पर आधारित थी। उत्तर वैदिक काल में भी महिलाओं की प्रस्थिति अच्छी थी परन्तु इस काल में महिलाओं के लिए धार्मिक कार्यों में भाग लेना सम्भव नहीं रहा, इनके वेदों के अध्ययन पर भी रोक लगा दी गयी। मध्यकाल में हिन्दू धर्म व संस्कृति की रक्षा के नाम पर महिलाओं पर कई तरह के प्रतिबंध लगा दिए गये जिससे उनकी स्थिति में और गिरावट आई। ब्रिटिश शासन काल में भारतीय सामाजिक संरचना में बाहरी प्रभावों का सूत्रपात एवं दखल प्रारम्भ हुआ जिसने महिला प्रस्थिति के प्रश्नों को भी प्रभावित किया।

स्वतंत्र भारत में संविधान निर्माताओं का प्रथम उद्देश्य, महिलाओं को अमानवीय स्थिति से निकालकर मानवीय धरातल पर रखना था। द्वितीय महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान करना व तृतीय महिलाओं को सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक व शैक्षिक, पृष्ठभूमि को देखते हुए अनेक संरक्षणात्मक प्रावधानों, विशेषाधिकारों द्वारा महिलाओं की संरक्षा, समानता एवं विकास को सुनिश्चित करना था। संविधान निर्माताओं के इन प्रयासों को भारतीय संविधान की प्रस्तावना में ही देखा जा सकता है। संविधान की प्रस्तावना से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता, समानता, न्याय, गरिमा, जैसे उच्च आदर्शों को बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों को प्रदान करने की सद्दृष्टि व्यक्त की है। उनके विचार में लैंगिक आधार पर भेद कदापि नहीं आया। समानता को समस्त संविधान के मूलसूत्र के रूप में स्वीकार किया गया है।

इसी आधार पर 21वीं शताब्दी को महिलाओं की शताब्दी के नाम से भी पुकारा जाने लगा है। चाहे विकसित देश हो या विकासशील महिलाएं पुरुषों के साथ कदम मिलाकर अपनी अन्तर्निहित क्षमता व आत्मविश्वास और साहस के साथ पुरुष प्रधान समाज में अपने अस्तित्व हेतु सफल प्रयास कर रही हैं। महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में सुधार करने के लिए विश्व में सभी जगह प्रयास किये जा रहे हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि एक मानव होने के नाते महिला के भी वही अधिकार हैं, जो कि पुरुष के, यदि इस अवधारणा को विश्व स्तर पर पूर्ण रूप से स्वीकृति प्राप्त हो जाए तो आज महिला सशक्तिकरण के जो प्रयास विश्व स्तर पर चल रहे हैं उनसे संबंधित समस्याओं का स्वतः ही समाधान हो जाएगा।

मूल शब्द: समाज, वैदिक, विकासशील, समानता, नारीवादी।

I. परिचय

सम्पूर्ण विश्व में मौलिक अधिकारों एवं मानव अधिकारों की स्वीकृति में ही महिलाओं के मानव अधिकार भी समाहित हैं। यद्यपि प्राचीन काल से ही शासन, युद्ध, कला व संस्कृति के क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर विभिन्न सभ्यताओं के विकास में अपना अमूल्य योगदान दिया है लेकिन ऐसे उदाहरण अपवाद स्वरूप ही विद्यमान रहे हैं।

इस व्याख्या एवं प्रतिरोध का सुदृढ़ आधार है- महिला की मानव के रूप में स्वीकारोक्ति तथा उन सभी अधिकारों की वैधता जो मानवाधिकार के रूप में उसके साथ जुड़े हुए हैं। अतः यह निर्विवाद तथ्य होना चाहिए कि महिला अधिकारों का हनन मानवाधिकारों का हनन है, परन्तु ऐसा नहीं है। इस सामान्य, स्वाभाविक, सतही तौर पर निर्विवाद वक्तव्य के लिए कानूनी दर्जा हासिल करने के लिए भी महिला आंदोलनों को लंबे संघर्ष की आवश्यकता पड़ी। हमारे पुराणों और शास्त्रों के अनुसार यह पृथ्वी नारी शक्ति से ही चल रही है।

आधुनिक युग में 19वीं शताब्दी में ही स्वतंत्रता के अधिकार को एक सिद्धान्त के रूप में मान्यता मिलने के साथ ही महिला की उपेक्षित स्थिति में परिवर्तन की शुरुआत होती है। इसे हम विभिन्न नारीवादी, मार्क्सवादी एवं अन्य सामाजिक व राजनीतिक चिन्तकों के चिन्तन में देख सकते हैं।

नारी की महिमा अपरंपार है। उसके रूप अनेक हैं। वह जन्म देती है और जीवन भी। इस तरह वह नियामक है। उसमें अनेक भाव निहित हैं। अपने हर रूप, हर भाव में वह सृजन, चेतना और शक्ति की प्रतीक है। हमारे वेद और धर्मग्रंथ नारी शक्ति के योगदान से भरे पड़े हैं।

स्त्री को पृथ्वी पर ब्रह्मा की प्रतिनिधि माना गया है। माना जाता है कि ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की मगर सृष्टि को चलाने का दायित्व स्त्री के जिम्मे सौंप दिया। उसकी सहभागिता के बिना इस सृष्टि का बचे रहना भी संभव नहीं। वह ईश्वर की श्रेष्ठ कृति है। संसार के हर चर-अचर में सर्वश्रेष्ठ है।

II. महिला मानवाधिकारों का विकास

भारतीय समाज में स्त्रियों को ज्ञान एवं शक्ति का प्रतीक माना गया है। इन प्रतीकों के रूप में भारतीय समाज नारी को सरस्वती, दुर्गा एवं लक्ष्मी के रूप में पूजता रहा है। सरस्वती रूप में नारी ज्ञान और शिक्षा के रूप में सृजन करती है। लक्ष्मी रूप में वह पालन करती है और महाकाली रूप में आसुरी शक्तियों का नाश करती है।

इस प्रकार हर युग में राष्ट्र के साथ समग्र कल्याण की हेतु देवी रूप में नारी शक्ति ही रही है। इसीलिए तो वह ईश्वर की अनुपम कृति है। वह गंगा के समान पवित्र, पृथ्वी के समान उसमें धैर्य और हिमालय के समान दृढ़ है।

प्राचीन काल से ही महिलाएं भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग रही हैं। स्त्री अधिकारों की दृष्टि से जैसा कि विभिन्न शोधों से स्पष्ट हुआ है, वैदिक युग में स्त्रियों की प्रस्थिति सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में समानता पर आधारित थी। राजनीतिक सभाओं क्रियाकलापों में भी स्त्रियों की सक्रिय सहभागिता का उल्लेख मिलता है। वेदों की रचना में लगभग 200 श्लोकों का योगदान महिलाओं का माना गया है।

वैदिक युग में समृद्धि ज्ञान एवं शक्ति के दैवीय प्रतीकों लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा के अतिरिक्त साहस एवं धर्म की प्रतीक पंचकन्याओं अहिल्या, तारा, मन्दोदरी, कुन्ती एवं द्रौपदी की अर्चना का विशेष महत्व बताया गया है। पुत्र और पुत्री दोनों के लिए उपनयन संस्कार अनिवार्य था।

इस युग में बालविवाह एवं पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था एवं महिलाओं को अपनी इच्छानुसार जीवनसाथी चुनने का अधिकार था तथा महिलाओं के अपमान को पाप समझा जाता था। इस प्रकार वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ थी, जहां वे पुरुषों के साथ गुरुकुल में अध्ययन कर सकती थी, अपने जीवनसाथी का चयन कर सकती थी अर्थात् पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सकती थी।

उत्तर वैदिक काल में भी महिलाओं की प्रस्थिति अच्छी थी परन्तु इस काल में महिलाओं के लिए धार्मिक कार्यों में भाग लेना सम्भव नहीं रहा, इनके वेदों के अध्ययन पर भी रोक लगा दी गयी। इस युग में बालविवाह एवं बहुपत्नी विवाह का प्रचलन बढ़ा, विधवा विवाह पर भी प्रतिबन्ध लगे एवं अन्य स्वतन्त्रता पर भी बंधन लगा दिये गये। उत्तर वैदिक काल के बाद धर्मशास्त्र काल सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता का युग था।

इस युग में महिलाओं की स्थिति में काफी गिरावट आई। इस काल में महिलाएँ गृहलक्ष्मी से याचक के रूप में दिखाई देने लगी एवं अत्यन्त निर्बल, असहाय तथा पराधीन हो गई। महिलाओं के लिए एकमात्र विवाह संस्कार ही रह गया और उनके सम्पत्ति के अधिकार भी छीन लिये गये, बाल विवाह का प्रचलन बढ़ा, जीवनसाथी चुनने का अधिकार छीना गया एवं पुरुष बहुपत्नी विवाह करने लगे।

इस युग में महिलाओं की प्रस्थिति बहुत ही निम्न स्थिति में पहुंच गयी। पुरुष प्रधान समाज स्त्रियों के अधिकारों का हनन करता गया और कभी सांस्कृतिक मूल्यों और कभी परम्पराओं के नाम पर स्त्री का शोषण किया गया। इन सबके परिणामस्वरूप स्त्रियों की स्थिति दिन-प्रतिदिन बढ़ से बदतर होती चली गयी।

मध्यकाल में हिन्दू धर्म व संस्कृति की रक्षा के नाम पर महिलाओं पर कई तरह के प्रतिबंध लगा दिए गये जिससे उनकी स्थिति में और गिरावट आई। सामाजिक संरचना में जटिलता, कठोरता, संकीर्णता तथा अपारदर्शी व्यवस्थाओं का उद्भव हुआ एवं महिलाओं की स्वतन्त्रता का शनैः शनैः और अधिक हनन हुआ।

महिलाओं की भूमिका को प्रजनन एवं पारिवारिकता तक सीमित किया जाने लगा। इस युग में पर्दाप्रथा, बालविवाह, धर्म परिवर्तन, विधवा उत्पीड़न, सती प्रथा, दहेज आदि कुरीतियों का प्रचलन बढ़ा। इन सभी के लिए यदि जिम्मेदार पुरुष थे तो स्वयं महिलाएं भी थी जो प्रतिद्वन्द्वी बनकर दूसरी महिला के दोहन और शोषण का कारण बनीं।

इस प्रकार मध्यकाल महिलाओं के पतन का युग था एवं उनकी निम्न दशा की चरम सीमा थी। इस प्रकार उत्तरोत्तर रूप में ज्यों-ज्यों समाजों, कालों में परिवर्तन हुआ, महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन होने लगा। धीरे-धीरे महिलाओं के अधिकारों में कमी होने लगी तथा महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों की संख्या में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। उसे समाज में वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ, जिसकी वह हकदार है। इसका प्रमुख कारण उसका सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़ापन रहा है।

ब्रिटिश शासन काल में भारतीय सामाजिक संरचना में बाहरी प्रभावों का सूत्रपात एवं दखल प्रारम्भ हुआ जिसने महिला प्रस्थिति के प्रश्नों को भी प्रभावित किया। इस काल में महिलाओं की दशा में कुछ सुधार हुआ और उन्हें आर्थिक क्षेत्र में समान अधिकार दिये गये, विधवा-पुनर्विवाह कानून एवं विवाह विच्छेद हेतु कानून लागू किये गये। बाल विवाह और सती प्रथा को रोकने हेतु कानून बनाये गये। पर्दाप्रथा भी समाप्त होने लगी।

महिलाओं को उनके अधिकार दिलाने के लिए अनेक महापुरुषों को संघर्ष करना पड़ा। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एवं महात्मा गांधी आदि ने पूरी शक्ति से महिलाओं के अधिकारों की पैरवी की जिससे महिलाओं को बहुत सी सामाजिक और परम्परागत दासताओं और बन्धनों से छुटकारा मिला।

उन्नीसवीं सदी के वृहद समाज सुधार आन्दोलनों से पूर्व राजस्थान के खेजड़ली गाँव की अमृता देवी का नाम पर्यावरण चेतना के इतिहास में उल्लेखनीय है। किन्तु परिवर्तन के इस इतिहास लेखन में सामान्य इतिहास लेखन की ही तरह महिलाओं के योगदान को पर्याप्त स्थान नहीं मिला।

यत्र-तत्र कुछ नामों को छोड़कर महिलाएं इतिहास में अदृश्य हैं। महिला मानवाधिकार के क्षेत्र में पंडिता रमा बाई, सावित्री बाई फुले, शिवन्तीबाई निकाम्बे, रानी चिमनबाई, महारानी सुनीति देवी, डॉ. रमा बाई, हीराबाई टाटा, लेडी दोराब टाटा एवं अन्य समर्पित महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इसके साथ ही सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गाँधी, रूकैया हुसैन, हंसा मेहता, विजयलक्ष्मी पंडित, कमला देवी, कृष्णा नेहरू, सुचेता कृपलानी, अरूणा आसफ अली एवं अन्य अनेक महिलाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान गाँधीवादी आन्दोलन के तत्वावधान में एवं इसके समानान्तर महिला प्रश्नों पर संघर्ष को जारी रखा। साथ ही महिलाओं के लिए समान अधिकारों, विशेषतः राजनीतिक अधिकारों के संघर्ष में माग्रेट कजिन्स, एनीबीसेन्ट, मगुधुलक्ष्मी रेड्डी, रामेश्वरी नेहरू, बेगम हामिद अली, राजकुमारी अमृत कौर तथा अनेकानेक महिलाओं की भूमिका भी उल्लेखनीय रही है। इन सभी के सहयोग से भारतीय महिला संघर्ष का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सामाजिक न्याय एवं लैंगिक न्याय से सम्बद्ध संगठनों एवं संघर्षों से जुड़ाव रहा।

इसके साथ ही महिला आन्दोलन की बीसवीं सदी में भी महिला अधिकारों की प्राप्ति के लिए सामाजिक विधान पर भी जोर रहा और इसमें महत्वपूर्ण सफलता भी हासिल की। विवाह, पुनर्विवाह, दहेज प्रतिषेध, विधवा विवाह, सती प्रतिबन्ध, सम्पत्ति विषयक उत्तराधिकार भरण-पोषण सभी क्षेत्रों में स्वाधीनता पूर्व भारत में सामाजिक विधान किया गया पर आम महिलाओं की प्रस्थिति में व्यापक गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया।

किन्तु इतना अवश्य रेखांकित किया जाना चाहिए कि 1931 में लैंगिक असमानता के लिए उद्घोषित प्रतिबद्धता को स्वाधीन भारत के संविधान में अनुच्छेद 14, 15, 16, 328, 326 एवं अनुच्छेद 44 के माध्यम से संवैधानिक अधिकारों एवं दायित्वों के रूप में स्वीकार किया गया।

III. रतीय संविधान और मानवाधिकार

शान्ति का आकांक्षी भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का सक्रिय सदस्य रहा है। मानवाधिकार संबंधी संयुक्त राष्ट्र संघ की सार्वभौमिक घोषणा (10 दिसम्बर, 1948) का भारत ने यथोचित सम्मान किया है। जिस समय सार्वभौमिक घोषणा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रवर्तन में आयी, ठीक उसी समय भारत में संविधान विरचित करने का भी कार्य चल रहा था।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का प्रभाव भारत की संविधान सभा पर भी पड़ा, भारत के संविधान ने भारत की संस्कृति का मूल मानवतावाद अंगीकार किया। भारत के संविधान के पारित होने के समय मानवाधिकार की बात न केवल चर्चा में आ चुकी थी,

वरन् संसार भर में मानवाधिकारों को लेकर आंदोलनात्मक हलचल प्रारम्भ हो चुकी थी, इसलिये उदारवादी दृष्टिकोण को लेकर मानवाधिकार को संरक्षण प्रदान करते हुए भारत के संविधान का निर्माण हुआ।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना ही संविधान का सारांश है। यह संविधान के दो तत्व स्पष्ट करती है-शासन व्यवस्था का उद्देश्य एवं उसका स्वरूप। प्रस्तावना की महत्ता को उद्धृत करते हुए न्यायाधीश एम० हिदायतुल्ला भी कहते हैं, “प्रस्तावना संविधान की आत्मा है, जिसमें अपने देश की सम्प्रभुता, समाजवादिता, धर्म-निरपेक्षता तथा लोकतांत्रिक शासन की झलक मिलती है तथा साथ ही साथ यह अपने देश को न्यायिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुरक्षा भी प्रदान करती है” अर्थात् प्रस्तावना से यह परिलक्षित होता है कि भारतीय संविधान मानव मूल्यों एवं गरिमा के विकास के लिये पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान करता है।

भारत के संविधान का भाग-3 (अनुच्छेद-12 से 35) मूल अधिकारों एवं भाग-4 (अनुच्छेद- 36 से 51) राज्य के नीति-निदेशक तत्वों के रूप मानवाधिकारों का उल्लेख करता है। मूल अधिकारों को मौलिक इसलिये कहा जाता है क्योंकि ये मानव व्यक्तित्व के विकास के आवश्यक तत्व माने गये हैं।

इस प्रकार, मौलिक अधिकारों की अवधारणा प्राकृतिक अधिकारों की अवधारणा के काफी करीब है। संविधान के मूल अधिकार राज्य के विरुद्ध लागू होते हैं एवं ये अधिकार राज्य को इन्हें लागू करने के कर्तव्य के अधीन मानते हैं जिसे प्राचीन शास्त्रों में ‘राजधर्म’ कहा गया है।

इसी राजधर्म को संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा में समाहित किया है तथा भारत ने इसे संविधान के भाग-3 एवं 4 में स्थान प्रदान किया है। मौलिक अधिकारों की वैदिक कालीन एवं प्राचीनतम अवधारणा को पुष्ट करते हुए उच्चतम न्यायालय में भी “मेनका गाँधी बनाम भारत संघ” में स्पष्ट करते हुए कहा है कि “मानवाधिकार वैदिक काल से लोगों के मूल मूल्यों को प्रदर्शित करते हैं और इनकी गणना व्यक्ति की गरिमा की संरक्षा के लिये की जाती है तथा प्रत्येक मानव प्राणी के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिये ये स्थितियों का सृजन करते हैं।” इससे भारतीय संस्कृति की सुखद धारणा ‘सर्वे जनाः सुखिन भवन्तु’ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है जिसे हम मानवाधिकारों का आधार कह सकते हैं।

भारत के संविधान के अनु० 12-35 में जिन छः मूल अधिकारों का उल्लेख है, उसके अंतर्गत अनु०-14 से 18 में समता का अधिकार, अनुच्छेद-19 से 22 में स्वतंत्रता का अधिकार, अनु०-23 और 24 में शोषण के विरुद्ध अधिकार, अनु०-25 से 28 में धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, अनु०-29 और 30 में संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार तथा अनु०-32 में संवैधानिक उपचारों का उपबंध है। मूल अधिकारों के वही तत्व मानवाधिकारों की श्रेणी में आते हैं, जिनके हनन होने पर कोई भी नागरिक इन्हें प्राप्त करने के लिये न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है।

हमारे संविधान के अनुच्छेद-21 में वर्णित ‘दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार’ सभी प्रकार के मानवाधिकारों की कसौटी है एवं इनके संरक्षण का वादा संविधान में इन शब्दों के अन्तर्गत किया गया है- “किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा अन्यथा नहीं।” इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ‘दैहिक स्वतंत्रता’ के अभाव में सभी स्वतंत्रताएँ व्यर्थ सिद्ध हो जायेगी, क्योंकि बिना जीवन के कोई भी व्यक्ति अधिकारों का उपभोग नहीं कर सकता।

इस कड़ी में हम अनुच्छेद-32 में वर्णित संवैधानिक उपचारों के अधिकार को भी रखते हैं जिसे न्यायालय द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया है। इन अधिकारों की महत्ता के सन्दर्भ में ‘डॉ० भीमराव अम्बेडकर’ भी कहते हैं, “यदि मुझसे पूछा जायेगा कि संविधान में कौन सा अनुच्छेद सबसे महत्वपूर्ण है जिसके बिना संविधान शून्य हो जायेगा तो मैं इसके सिवाय किसी का नाम न लूँगा, यह संविधान की आत्मा है।”

मूल अधिकारों का उल्लंघन होने पर उच्चतम न्यायालय को इसके अंतर्गत अधिकार दिया गया है कि वह अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये निर्देश, आदेश, लेख जारी कर सकता है तथा यह आदेश बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकारपृच्छा और उत्प्रेषण के रूप में हो सकता है।

इससे स्पष्ट होता है कि मूल अधिकारों का स्वरूप निषेधात्मक है तथा यह व्यक्तिगत हित (अधिकारों के सामान्य हित) को अधिकारों से अधिक उच्च स्थान प्रदान करता है। इस तरह संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों की अवधारणा सार्वभौमिक घोषणा के प्रावधानों से बहुत अधिक साम्यता रखती है। भारतीय संविधान में सामान्य तथा राजनीतिक अधिकारों को न केवल संरक्षण दिया गया है बल्कि इन्हें पर्याप्त सम्मान भी दिया गया है।

मूल अधिकारों के ही उपरान्त संविधान के भाग-4 में अनुच्छेद-36 से 51 में राज्य के नीति-निदेशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। इसमें वर्णित व्यवस्था लोकहित पर बल देती है एवं समाजवादी वृत्ति की द्योतक है किन्तु इन्हें कानून द्वारा संरक्षित नहीं किया गया है

अर्थात् ये किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है, फिर भी ये तत्व देश के शासन में मूलभूत है एवं विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा। 'राजनीतिक लोकतन्त्र' के साथ-साथ 'आर्थिक लोकतंत्र' की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है जिसकी उपेक्षा कोई सरकार नहीं कर सकती।

इसी कारण न्यायमूर्ति जान मैथ्यू ने नीति निदेशक तत्वों को 'नैतिक अधिकार' की संज्ञा दी। इस प्रकार संविधान के भाग-4 में उल्लेखित ये नैतिक अधिकार अपने वास्तविक रूप में मानवाधिकारों से ही संबंध रखते हैं जो मानव जीवन के बेहतर जीवन की परिस्थितियों के लिये अत्यावश्यक है।

ग्रेनविल आस्टिन ने संविधान के भाग-3 एवं भाग-4 के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा भी है कि "सामाजिक विकास की प्रतिबद्धता का मर्म भाग-3 एवं भाग-4 मूल अधिकार एवं नीति-निदेशक तत्वों में निहित है। ये संविधान की आत्मा है।"

इसके अतिरिक्त संविधान के भाग-पाँच में उल्लेखित संघीय शासन का स्वरूप जिसमें संसदीय प्रणाली, निर्वाचित राष्ट्रपति संसद का मतदाताओं के प्रति उत्तरदायित्व और मंत्रीमण्डल का संसद के प्रति उत्तरदायित्व की व्यवस्था है। भाग-15 में दिये गये निर्वाचन संबंधी प्रावधान उदारवादी लोकतांत्रिक अवधारणा को प्रतिष्ठित करते हैं एवं भाग-16 में वर्णित कतिपय वर्गों के लिये विशेष अनुबंध के अंतर्गत अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये विशेष प्रावधान की व्यवस्था आदि भी संविधान की उदारवादी भावनाओं की ही द्योतक है।

इस प्रकार भारतीय संविधान में वर्णित विभिन्न अनुच्छेद मानवाधिकार की गारंटी प्रदान करते हैं एवं इसे भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कई फैसलों में समय-समय पर उद्धृत किया है। इन निर्णयों के जरिये उस लोकतांत्रिक भावना को पुष्ट करने का प्रयास किया गया है जो वास्तविक रूप से सामाजिक न्याय के प्रवर्तन में सहायक है और जो किसी भी प्रगतिशील राष्ट्र का अनिवार्य लक्षण भी है।

मानवाधिकारों के संरक्षण एवं इसके हनन से संबंधित मामलों को त्वरित गति से निस्तारित करने के उद्देश्य से वर्ष 1993 में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम बनाया गया। इसमें मानवाधिकारों के संरक्षण के लिये राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग के अतिरिक्त जिला मानवाधिकार आयोग के गठन तक की व्यवस्था की गयी है। इसी प्रकार महिलाओं के संवैधानिक व कानूनी अधिकारों के प्रभावी क्रियान्वयन तथा उनके उल्लंघन के मामलों की छानबीन और परीक्षण हेतु वर्ष 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया।

सारांशतः 1950 में स्थापित संविधान का मूल स्वर मानवीय मूल्यों पर आधारित है। यद्यपि इसमें समष्टिवादी समाजवादी तत्वों का भी समावेश है किन्तु ये 'तत्व मानववाद' के विलोम नहीं अपितु उसके पूरक के परिचायक हैं एवं 'मानववाद' का दर्शन ही इस उक्ति पर आधारित है कि "मनुष्य ही सभी चीजों की कसौटी है।"

अतः भारतीय संविधान उल्लेखनीय रूप में एक ऐसा विधिक दस्तावेज है जो मानव अधिकारों के विधिशास्त्र को अंगीभूत करता है एवं सामान्यतया उन मूल्यों को संरक्षित करता है जो मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा एवं दोनों प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट है।

IV. निष्कर्ष

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि एक मानव होने के नाते महिला के भी वही अधिकार हैं, जो कि पुरुष के, यदि इस अवधारणा को विश्व स्तर पर पूर्ण रूप से स्वीकृति प्राप्त हो जाए तो आज महिला सशक्तिकरण के जो प्रयास विश्व स्तर पर चल रहे हैं उनसे संबंधित समस्याओं का स्वतः ही समाधान हो जाएगा।

किंतु जहाँ मानव अधिकारों की अपरिहार्यता पर दीर्घकालिक संघर्ष के बावजूद आम सहमति संभव हो सकी है, वहीं अधिकारों की आवश्यकता, प्रकृति और उनकी सही रूप में क्रियान्विति के विविध पक्षों पर आज भी विवाद बना हुआ है। तथापि आज वर्तमान समय में विश्व में महिलाओं के समुचित विकास के लिये अनुकूल वातावरण बनता जा रहा है।

इसी आधार पर 21वीं शताब्दी को महिलाओं की शताब्दी के नाम से भी पुकारा जाने लगा है। चाहे विकसित देश हो या विकासशील महिलाएं पुरुषों के साथ कदम मिलाकर अपनी अन्तर्निहित क्षमता व आत्मविश्वास और साहस के साथ पुरुष प्रधान समाज में अपने अस्तित्व हेतु सफल प्रयास कर रही हैं। महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में सुधार करने के लिए विश्व में सभी जगह प्रयास किये जा रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मेहरोत्रा, ममता, महिला मानवाधिकार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 16-17.
2. दीक्षित सोना एवं दीक्षित अरुण कुमार, महिलाओं के मानवाधिकारों का संरक्षण, कुरुक्षेत्र, कुरुक्षेत्र प्रकाशन, 2005, पृ. 11.
3. चतुर्वेदी सतीश, मानवाधिकार और संयुक्त राष्ट्र संघ, जयपुर, पोइन्टर पब्लिशर्स, 2002, पृ. 90-92.
4. संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्बंध में बुनियादी तथ्य संयुक्त राष्ट्र सूचना केन्द्र अनुदित एवं प्रकाशित, 2001, पृ. 243.
5. सिंह एम.के. व कुमार आशुतोष, संयुक्त राष्ट्र संघ, कल्पना पब्लिशर्स, चतुर्थ संस्करण, दिल्ली, 2019, पृ. 140-41.
6. कौशिक विजय, वूमैन्स मूवमेन्ट एण्ड ह्यूमन राइट्स, पोइन्टर प., जयपुर, 1997.
7. कपूर, एस. के., मानवाधिकार एवं अंतर्राष्ट्रीय विधि, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद, पृ. 837
8. श्रीवास्तव वी. पी., ह्यूमन राइट्स इश्यूसेज एण्ड इम्प्लीमेंटेशन, भाग 1, दिल्ली, इण्डियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2004, पृ. 131
9. शर्मा, प्रज्ञा, भारतीय समाज में नारी, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2006.
10. कांत मीरा, महिला दशक और हिन्दी पत्रकारिता, नई दिल्ली, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, 1994, पृ. 26.
11. शर्मा, प्रेम नारायण, महिला सशक्तीकरण एवं समग्र विकास, भारत बुक एवं संजीव कुमार झा सेंटर, लखनऊ, 2006.
12. शर्मा, प्रज्ञा, महिला विकास और सशक्तीकरण, अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2001.
13. देसाई, नीरा एवं ठक्कर ऊषा, वूमैन्स इन इंडियन सोसाइटी, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, 2022.
14. देवी, उमा, वूमैन्स इक्लिटी इन इंडिया ए मिथ और रिएलिटी, डिसकवरी पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2019
15. बक्सी एस. आर., वेलफेयर एण्ड डवलपमेंट ऑफ वूमैन, दीप एण्ड दीप पब्लिशर्स, दिल्ली, 2000.
16. परीक्षा मंथन, वाषिकांक: “भारत में महिला सशक्तीकरण समग्र विवेचना, भाग 5, 2020- 21, पृ. 367
17. मेहता, चेतन सिंह, महिला एवं कानून, आशीष पब्लिशर्स हाउस, दिल्ली, 2004.
18. कौशिक, आशा, मानवाधिकार और राज्य - बदलते संदर्भ उभरते आयाम, जयपुर, पोइन्टर पब्लिशर्स, 2004, पृ. 22.
19. जाखड, पी. इस., दलीय मानवाधिकार और पुलिस संगठन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, 2017, पृ. 23-24.



International Journal of Advanced Research in Education and Technology

ISSN: 2394-2975

Impact Factor: 9.971